एक कोशिका से पूरा जीव कैसे बनता है?

एम. महादेव

वर्ष 2002 का जीव विज्ञान-चिकित्सा विज्ञान का नोबल पुरस्कार सिडनी ब्रेनर, जॉन सुल्स्टन और रॉबर्ट हॉर्विट्ज़ को संयुक्त रूप से दिया गया था। इन वैज्ञानिकों ने जीवों के अंगों के निर्माण और कोशिकाओं की तयशुदा मृत्यु के सम्बंध में अनुसंधान करके महत्वपूर्ण योगदान दिया है। मगर इनके योगदान के महत्व को समझने से पहले थोड़ा जीव विज्ञान समझ लेना आवश्यक है।

एक सवाल

जीव विज्ञान में एक महत्वपूर्ण समस्या यह समझने की है कि आखिर एक कोशिका में परिवर्तन कैसे होते हैं। मसलन एक निषेचित अण्डा (जो शुरू में मात्र एक कोशिका ही होता है) कैसे धीरे-धीरे विकसित होकर पूरा जीव बन जाता है। कैसे उसमें अलग-अलग किस्म की कोशिकाएं बनती हैं, ऊतक बनते हैं और अंग बनते हैं जो पूरे तालमेल से काम करते हैं। कोशिका को पता कैसे चलता है कि उसे क्या बनना है? क्या यह चीज़ कोशिका के जिनेटिक प्रोग्राम में ही पूर्व निर्धारित होती है? या क्या किसी कोशिका की नियति इस बात पर निर्भर है कि वह भ्रूण में किस जगह स्थित है? प्रथम तरीका मोज़ेइक विकास कहलाता है; इसमें प्रत्येक कोशिका में एक आंतरिक निर्देश होता है कि वह कोशिका क्या बनेगी। द्वितीय तरीका नियमन विकास कहलाता है जिसमें प्रत्येक कोशिका का विकास उसकी आसपास की कोशिकाओं के साथ परस्पर क्रिया से तय होता है। वास्तव में विकास इनमें से किस तरीके से होता है? या क्या विकास में एक मिले-जुले तरीके का उपयोग हो सकता है? यदि हां, तो क्या इन अलग-अलग तरीकों को पहचाना जा सकता है?

जंतु मॉडल या मॉडल जंतु

विकास जीव विज्ञान का विषय इन बुनियादी सवालों के जवाब पाने से सम्बंधित है। इनका उत्तर पाने के लिए हमें अध्ययन के लिए एक मॉडल तंत्र की आवश्यकता है। विकास सम्बंधी प्रारंभिक अध्ययनों में मॉडल तंत्र के रूप में उभयचर जन्तुओं के अण्डों का उपयोग किया जाता था। इन अध्ययनों से कई उपयोगी बातें पता चलीं। मसलन यह पता चला कि अण्डे में एक निहित असममिति (बेडौलता) होती है। यह भी पता चला कि भ्रूण की कुछ कोशिकाओं में यह क्षमता होती है कि उन्हें यदि भ्रूण में किसी अन्य जगह प्रत्यारोपित कर दें, तो भी वे निर्धारित ऊतक बना देती हैं।

हाल के समय में विकास के अध्ययन में जिनेटिक्स के उपयोग पर काफी अनुसंधान किया गया है। इन अध्ययनों में एक मक्खी *ड्रॉसोफिला* का उपयोग बहुतायत से किया गया है। इस संदर्भ में क्रिस्टिएन नुसलाइन-वोलहार्ड, एरिक विस्काउस और एडवर्ड बी. लुइस ने दर्शाया कि जिनेटिक कोड में कुछ मास्टर जीन्स होते हैं जो विकास प्रक्रिया का नियमन करते हैं। इसके अलावा उन्होंने यह भी पता लगाया कि अण्डे में मार्फोजेन्स होते हैं जो पैटर्न निर्माण में मदद करते हैं। इन वैज्ञानिकों को इस कार्य के लिए 1995 में नोबल पुरस्कार से सम्मानित किया गया था।

छोटी-सी मक्खी *ड्रॉसोफिला* लगभग एक सदी से जिनेटिक वैज्ञानिकों की प्रिय रही है। इसने क्लासिकल जिनेटिक्स और आण्विक जीव विज्ञान, दोनों क्षेत्रों में वैज्ञानिकों की मदद की और कई महत्वपूर्ण सवालों के अन्वेषण में भूमिका अदा की है। मगर इस मक्खी की साइज़ इन प्रयोगों की दृष्टि से काफी बड़ी है। इसलिए विकास के दौरान प्रत्येक कोशिका की नियति पता लगाना तो मुमकिन नहीं हुआ है मगर इसके विकसित होते भ्रूण के बड़े-बड़े हिस्सों के बारे में ज़रूर कुछ अंदाज़ लगाए गए हैं। भ्रूण के ऐसे हिस्सों को इमेजिनल डिस्क कहते हैं जो आगे चलकर अलग-अलग अंगों में तब्दील हो जाती हैं।

मगर प्रत्येक कोशिका की नियति पता लगाने के लिए

कोई अन्य मॉडल तंत्र ज़रूरी था जो बहुत बड़ी साइज़ का न हो मगर उसमें ऐसे शारीरिक लक्षण मौजूद हों कि विकास से सम्बंधित अध्ययन किए जा सकें। नोबल पुरस्कार विजेता सिडनी ब्रेनर ने साठ के दशक में इस मकसद से एक कृमि *सेनॉरहैबिडिस एलेगेन्स* पर प्रयोग शुरू किए। इस मॉडल का पूर्ण दोहन तो आगे चलकर होर्विट्ज़ और सुल्स्टन ने किया। उन्होंने इसका उपयोग करते हुए कोशिकाओं की वंशावली और विकास में जिनेटिक प्रक्रियाओं का पता लगाने में योगदान दिया। उनके अध्ययनों से जीव विज्ञान की एक और अहम प्रक्रिया का पता लगा - कोशिका की तयशुदा मृत्यु या प्रोग्राम्ड डेथ। इसका आशय यह है कि प्रत्येक कोशिका अपने विकास व वृद्धि के सामान्य क्रम में किसी खास मुकाम पर आकर मर जाती है। इन परिणामों का चिकित्सा व मानव स्वास्थ्य के कई पहलुओं से गहरा ताल्लुक है।

सिडनी ब्रेनर का कृमि

सिडनी ब्रेनर जीव विज्ञान में युगांतरकारी खोजों से जुड़े रहे हैं। दक्षिण अफ्रीका में जन्मे ब्रेनर ने डॉक्टर ऑफ फिलॉसफी की उपाधि ऑक्सफर्ड की फिज़िकल केमेस्ट्री प्रयोगशाला से प्राप्त की थी। यह वह समय था जब जीन्स का नियमन करने वाले बुनियादी सिद्धांतों पर काम शुरू ही हुआ था। तब इस काम में बैक्टीरिया व बैक्टीरिया को संक्रमित करने वाले वायरसों का अध्ययन किया जाता था।

1953 में वॉटसन और क्रिक द्वारा डी.एन.ए. की दोहरी कुण्डली की खोज के बाद जीव विज्ञान में एक महत्वपूर्ण सवाल यह था कि डी.एन.ए. में न्यूक्लियोटाइड्स के क्रम और उसके द्वारा निर्मित प्रोटीन में अमीनो अम्ल के क्रम के बीच क्या सम्बंध है। एक सम्भावना यह थी कि यह सम्बंध तीन-तीन न्यूक्लियोटाइड के परस्पर व्याप्त कोड के ज़रिए है। यह मॉडल 1954 में जॉर्ज गैमॉव ने प्रस्तुत किया था। इसके मुताबिक डी.एन.ए. पर तीन क्षारों की एक तिकड़ी किसी एक अमीनो अम्ल की द्योतक होती है। ब्रेनर ने दर्शाया था कि इस कोड में ये तिकड़ियां परस्पर व्याप्त नहीं हो सकतीं क्योंकि वैसा होने पर प्रोटीन रचना बहुत सीमित हो जाएगी। फ्रांसिस क्रिक के साथ मिलकर उन्होंने 1961 में यह स्पष्ट किया कि तीन-तीन क्षारों की परस्पर स्वतंत्र तिकड़ियां एक-एक अमीनो अम्ल की द्योतक होती हैं। इसके अलावा ब्रेनर ने जेकब व मेसलसन के साथ मिलकर यह भी स्पष्ट किया कि डी.एन.ए. और आर.एन.ए. के बीच एक कड़ी होती है जिसे संदेशवाहक आर.एन.ए. कहते हैं। अंततः 1964 में आनंद साराभाई व अन्य के साथ मिलकर ब्रेनर यह भी दर्शा पाने में सफल रहे कि डी.एन.ए. पर जीन शृंखला के क्रम और प्रोटीन में अमीनो अम्लों के क्रम के बीच एक-एक की संगति होती है।

इन उपलब्धियों के बाद ब्रेनर ने विकास की प्रक्रिया पर ध्यान केंद्रित किया। विकास सम्बंधी अध्ययनों के लिए एक छोटे मॉडल की तलाश उन्हें कृमि *सेनॉरहैबिडिस एलेगेन्स* तक ले गई।

यह कृमि करीब 1 मि.मी. लम्बा होता है और निषेचित अण्डे से पूरा कृमि बनने में तीन दिन का समय लगता है। प्रयोगशाला में एक पैट्री डिश में हज़ारों कृमि पाले जा सकते हैं। इस कृमि की एक और विशेषता ने ब्रेनर का ध्यान आकर्षित किया था। वयस्क कृमि दो प्रकार के होते हैं: एक नर तथा दूसरे द्विलिंगी। इनमें कुल कोशिकाओं की संख्या करीब 1000 होती है। इतने छोटे जीव में प्रत्येक कोशिका की नियति का पता लगाना आसान है। एक और रोचक बात यह है कि इस कृमि का शरीर पारदर्शी होता है। इस वजह से वृद्धि व विकास के दौरान इसकी प्रत्येक कोशिका को देखा जा सकता है।

1974 में ब्रेनर ने रिपोर्ट किया कि उन्होंने इथाइल मीथेन सल्फोनेट (इ.एम.एस.) नामक रसायन के प्रभाव से इस कृमि के 300 उत्परिवर्तित रूप प्राप्त किए हैं। इनमें शारीरिक व व्यवहारगत भिन्नताएं देखी गईं। इन उत्परिवर्तित कृमियों के विश्लेषण से 100 जीन्स पहचानने में मदद मिली - इनमें से 77 तो गति से सम्बंधित थे। द्विलिंगी कृमियों में स्व-प्रजनन करवाकर उत्परिवर्तन का जिनेटिक प्रकार पता लगाया जा सकता था ताकि नए जीनोटाइप बन सकें। अर्थात् ब्रेनर ने दर्शाया कि विकास के सामान्य अध्ययन में जिनेटिक्स से बहुत मदद मिल सकती है।